तक चित्त श्रीकृष्णचरणारविन्द में एकाग्र नहीं हो जाये, तब तक दिव्य भगवत्सेवा में ऐसी तत्परता नहीं हो सकती। भक्तिपथ में इन विहित क्रियाओं को **अर्चना**, अर्थात् भगवत्सेवा में सब इन्द्रियों को नियोजित करना कहते हैं। इन्द्रियों तथा मन को कुछ न कुछ कार्य अवश्य चाहिए। इसलिए केवल प्रतिषेध सफल नहीं हो सकता। सामान्य जनता के लिए, विशेषतः उनके लिए जो संन्यासाश्रम में नहीं हैं, पूर्ववर्णित विधि से इन्द्रियों और मन को भगवत्सेवा में लगाना भगवत्प्राप्ति का सिद्धि पथ है। भगवद्गीता में इसी को **युक्त** कहा गया है।

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः।।१९।।

यथा=जिस प्रकार; **दीपः**=दीपक; **निवातस्थः**=वायुरहित स्थान में स्थित; **न**=नहीं; **इंगते**=चलायमान होता; **सा उपमा स्मृतः**=वही उपमा कही गयी है; **योगिनः**=योगी के; **यतचित्तस्य**=जीते हुए चित्त की; **युञ्जतः**=निरन्तर तत्पर; **योगम्**=ध्यान में; **आत्मनः**=दिव्य तत्त्व के।

अनुवाद

जिस प्रकार वायुरहित स्थान में दीपक चलायमान नहीं होता, उसी भाँति संयतचित्त योगी नित्य दिव्य आत्मतत्त्व के ध्यान में एकाग्र रहता है।।१९।।

तात्पर्य

दिव्यतत्त्व में निरन्तर तन्मय रहने वाला यथार्थ कृष्णभावनाभावित पुरुष अपने आराध्यपद भगवान् श्रीकृष्ण के निरन्तर अचल ध्यान में उसी प्रकार स्थिर रहता है, जैसे वायुरहित स्थान में दीपक।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।।२०।।
सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।।२१।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।२२।।
तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।।२३।।

यत्र=जिस अवस्था में; **उपरमते**=दिव्य आनंद की अनुभूति होती है; **चित्तम्**=मन को; **निरुद्धम्**=विषयों से निवृत्त; **योगसेवया**=योग के अभ्यास द्वारा; **यत्र**=जब; **च**=तथा; **एव**=निःसन्देह; **आत्मना**=शुद्ध चित्त से; **आत्मानम्**=आत्म-स्वरूप की; **पश्यन्**=स्थिति का अनुभव करता हुआ; **आत्मनि**=आत्म-स्वरूप में; **तुष्यति**=संतुष्ट रहता है; **सुखम्**=सुख; **आत्यन्तिकम्**=परम; **यत्**=जो; **तत्**=वह;